Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
Available online at : www.shisrrj.com
OPEN ACCESS
© 2024 SHISRRJ | Volume 7 | Issue 6
ISSN : 2581-6306
doi : https://doi.org/10.32628/SHISRRJ

किरातार्जुनीयमहाकाव्य में शिव का स्वरूप

राम अचल यादव
शोधच्छात्र, स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची

Article Info

Accepted : 05 Dec 2024
Published : 25 Dec 2024

Publication Issue :
November-December -2024
Volume 7, Issue 6

Page Number : 69-74

शोधसारांश- किरातार्जुनीयमहाकाव्य में महाकवि भारवि शैव सिद्धान्त धर्म से पूर्णत: परिचित थे इसीलिए उन्होंने अष्टादशसर्ग में अर्जुन के मुख से भगवान् शिव के विभिन्न स्वरूपों का स्तुति करवाया है। अत: संक्षेप में यह कह सकते है कि भगवान् शिव का स्वरूप स्वभावत: आनन्द रूप है, यही सच्चिदानन्द है, यही सत्यं शिवं सुन्दरम् है। यह विशुद्धतम् सत् होकर भी असत् नहीं है। अभिव्यक्ति की दृष्टि से वह चित् है एवं रसास्वाद की दृष्टि से वही आनन्द है। वह अप्रमेय होने पर भी स्वप्रकाश है एवं स्वप्रकाशता के कारण स्वयं आनन्द भी है तथा अपने स्वारूपानन्द का स्वयं आस्वादन भी करता है।

मुख्य शब्द- किरातार्जुनीय, महाकाव्य, महाकवि भारवि, अर्जुन, शिव, सच्चिदानन्द।

ॐ असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्माऽमृतं गमय ।

यया बिना यो न बिभर्ति रूपं पृथग्यतो या न दधाति सत्ताम् ।

तदात्मिकायै च तदात्मने च नम: शिवायै च नम: शिवाय।।

शैवसिद्धान्त धर्म में ईश्वर को शिव से अभिहित किया गया हैं शिव परमतत्त्व अथवा परमसत्ता है। समस्त जगत के आभ्यन्तर उसी की सत्ता है, आर्य मनीषा ने उसे अपने जीवन के धार्मिक परिवेश में सर्वाधिक निकटतम महसूस किया है इसलिए वह लौकिक जीवन की अच्छाई-बुराई, विरूप, विश्वरूप है।[1] वह केवल प्राणिमात्र की आत्मा में ही नहीं अपितु प्रकृति के कल्याणमय सौन्दर्य और उसके भयंकर रूपों में उनका प्रतिनिधत्व करता है। वह मात्र दार्शनिक चिन्तन का विषय नहीं रह जाता अपितु जीवन की जीवन्तता को बनाये रखने के लिए सहयोगी होता है। प्रकृति के विकराल रूपों और जीवन के विभिन्न पहलुओं में वह विश्वात्मा सतत् संघर्षशील है इसलिए धार्मिक विश्वासों में उसे लक्षणाओं द्वारा विभिन्न उपाधियों से संयुक्त किया गया चूँकि वह समस्त जगत में व्याप्त है इसीलिए वह उन भिन्न रूपों में भी अवस्थित है।[2] यथा उसकी सौम्य, अघोर शान्त-निर्विकार मूर्ति सुखदात्री है। शंभवाय शिवाय और शिवतराय है।[3] वह पाप को दूर करने वाला है, सुखदाता है, दु:खों और बाधाओं का नाश करने वाला है[4], भिषक हैं[5] विषहर्ता रूप में वह नीलकण्ठ है[6], अपने सात्त्विक रूप

Copyright © 2024 The Author(s): This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution **4.0 International License (CC BY-NC 4.0)**

में वह श्वेत है।[7] शिपिविष्ट अर्थात् सभी प्राणियों के अन्त: स्थल में वर्तमान है।[8] पर्वतों से वृष्टि आदि द्वारा अन्नरूप सुखदाता ही इन्द्ररूप है।[9] वह उन सभी लोगों का श्रद्धेय है, आराध्य है जो उसकी सत्ता स्वीकार करते हैं जो लोग उनकी उपासना करते हैं चाहे वे किसी व्यवसाय समूह अथवा वर्ग में हो वह उनके तद्-तद् रूपों में अनुग्रह करता है उनके जीवन कर्म को सार्थक बनाता है। यथा-रथकार, कर्मकार कुम्हार और शिल्पियों में वह उसकी कलारूप कर्म का प्रेरयिता है।[10] उसका रौद्र एवं शस्त्र धारी वीररूप युद्ध काल में सेनाओं और वीरों में साहस भर देता है, इसलिए वह सेना-सेनानी एवं प्रधान सेनापति रूप है।[11] किरातों[12] व्रात्यगण समूहों[13] पशुओं प्रकृति के समस्त क्रिया कलापों, शास्त्रोपजीवियों, अप्रकाशित कर्मजीवियों में भी वह पूजित है, [14] क्योंकि वह प्राणिमात्र में अन्तस्थ है।

विश्व का कारण परमशिव की ही एक मात्र सत्ता काश्मीर शैवदर्शन में है। वह प्रमाता और प्रमेय अथवा ज्ञाता और ज्ञेय दोनों हैं शिव अनुभवकर्ता भी है और स्वयं अनुभूत पदार्थ भी है।[15] क्योंकि अनुभव करने वाला आत्मा तथा अनुभूत होने वाला जगत् दोनों है। अपने अन्दर स्वरूप में ही निहित अद्भुत शक्ति के माध्यम से वही स्वयं को ब्राह्माण्ड के रूप में प्रकट करता है तथा विभिन्न अवस्थाओं को धारण करने पर भी वह अपने यथार्थस्वरूप से च्युत नहीं होता।[16]

किरातश्च अर्जुनश्च इति किरातार्जुनौ (द्वन्द समास) तौ (किरातार्जुनौ) अधिकृत्य कृतं काव्यं किरातार्जुनीयम्। इसमें किरात रूप में भगवान् शिव तथा अर्जुन दोनों के भीषण युद्धोपरान्त अर्जुन ने अष्टादश सर्ग में भगवान् शिव के स्वरूप की स्तुति इस प्रकार की है।

शरणं भवन्तमतिकारुणिकं भव भक्तिगम्यमधिगम्य जना:।[17]

जितमृत्यवोऽजित ! भवन्ति भये ससुरासुरस्य जगत: शरणम् ।।

अर्थात् किसी से पराजित न होने वाले हे शिवजी ! अत्यन्त दयालु भक्ति से सुलभ आप को रक्षक पाकर मृत्यु को जीत कर भय के समय में देवताओं और दैत्यों से युकत लोक को शरण देने वाले हो जाते हैं।

संसेवन्ते दानशीला विमुक्तौ संपश्यन्तो जन्मदु:खं पुमांस:।।[18]

यन्नि: सङ्गस्त्वं फलस्यानतेभ्यस्तत्कारुण्यं केवलं न स्वकार्यम् ।।

अर्थात् दान करने के स्वभाव वाले पुरुष और जन्म के दु:ख को देखते हुए मोक्ष पाने के लिए आपकी की सेवा करते हैं। प्रणाम करने वालों को नि:स्पृह होकर जो आप फल देते है वह केवल आपकी करूणा है, अपना कार्य नहीं है।

प्राप्यते यदिह दूरमगत्वा यत्फलत्यपरलोकगताय ।[19]

तीर्थमस्ति न भवार्णवबाह्यं सार्वकामिकमृते भवतस्तत् ।।

अर्थात् जिस तीर्थ को मनुष्य इस लोक में दूर न जाकर पाता है जो तीर्थ परलोक में गये हुए पुरूष को फल देता है, संसार रूप समुद्र से बाह्य अर्थात् मोक्षपद जो कि सकल अभिलाष रूप प्रयोजनवाला तीर्थ है वह आप से अतिरिक्त नहीं है।

संनिबद्धमपहर्तुमहार्यं भूरि दुर्गतिभयं भुवनानाम्।[20]

अद्भुताकृतिमिमामतिमायस्त्वं बिभर्षि करूणामय ! मायाम् ।।

अर्थात् बन्धरूप माया का लंघन करने वाले हे दयालो ! अपने कर्म से दृढ़ रूप से बद्ध औरों से अनुच्छेदनीय लोकों का प्रचुर नरक भय को हटाने के लिए आप ही विचित्र रूप वाली दृश्यमान लीला विग्रह रूप इस माया को धारण कर लेते हैं।

न रागि चेत: परमा विलासिता वधू: शरीरेऽस्ति न चास्ति मन्मथ:।[21]

नमस्क्रिया चोषसि धातुरित्यहोनिसर्गदुर्बोधमिदं तवेहितम् ।।

अर्थात् हे भगवान् आपका चित्त रागद्वेष वाला नहीं है तो भी आप को अनुपम शृङ्गार आदि चेष्टाशीलता है तथा आप के अर्धाङ्ग में पत्नी (पार्वती) हैं, तथापि आप में कामविकार नहीं है, परन्तु प्रात: काल की सन्ध्या में आप ब्रह्मा जी को नमस्कार करते हैं, आश्चर्य है कि आपकी यह चेष्टा स्वभावत: दुर्बोध है।

तवोत्तरीयं करिचर्म साङ्गजं ज्वलन्मणि: सारसनं महानहि: ।[22]

स्रगास्यपङ्क्ति: शवभस्म चन्दनं कला हिमांशोश्च समं चकासति ।।

अर्थात् हे भगवन् ! रोम से युक्त गजचर्म आपका उत्तरीय है, चमकती मणिवाला विशाल सर्प आपका कटिभूषण है, नरकपालों की पंङ्क्ति आपकी माला है, शवभस्म आपका चन्दन है और आपके शिर में स्थित) चन्द्रकला भी ये सब पदार्थ आप में तुल्यरूप से प्रकाशित हो रहे हैं।

त्वमन्तक: स्थावरजङ्गमानां, त्वया जगत्प्राणिति देव ! विश्वम् ।[23]

त्वं योगिनां हेतुफले रुणत्सि त्वं कारणं कारणकारणानाम् ।।

अर्थात् हे भगवन् आप स्थावर (अचर) और जङ्गम (चर) प्राणियों के संहारक हैं आप से समस्त लोक प्राण धारण करता है। आप योगियों के प्रवर्तक कर्म और उसके भोग का निवारण करते हैं, अर्थात् उनके बन्ध को छुड़ाते है। आप पञ्चमहाभूत और उनके कारण–भूत सूक्ष्म (शब्द स्पर्श) आदि के कारण है।

अष्टमूर्ति रूप में भगवान् शिव का स्तवन् :-

तरसा भुवनानि यो बिभर्ति ध्वनति ब्रह्म यत: परं पवित्रम् ।[24]

परितो दुरितानि य: पुनीते शिव तस्मै पवनात्मने नमस्ते ।।

अर्थात् हे शिव जी ! जो वायुदेव बल से लोको को धारण करते हैं, जिसकी प्रेरणा से पवित्र परम ब्रह्म ध्वनित होता है जो वायुदेव चारों ओर से पातकों को नष्ट करते हैं, ऐसे पवित्र करने वाले वायु स्वरूप आप को नमस्कार है।

भवत: स्मरतां सदासने जयिनि ब्रह्ममये निषेदुषाम् ।[25]

दहते भवबीजसंततिं शिखिनेऽनेकशिखाय ते नमः ।।

अर्थात् जयशील ब्रह्म योगासन में बैठे हुए आप का स्मरण करते हुए योगियों का संसार के हेतु कर्म समूह का दाह करते हुए अनेक ज्वालाओं से युक्त अग्निस्वरूप आप को नमस्कार है।

आबाधामरणभयार्चिषा चिराय प्लुष्टेभो भव महता भवानलेन ।[26]

निर्वाणं समुपगमेन गच्छते ते बीजानां प्रभव नमोऽस्तु जीवनाय ।

अर्थात् हे शिवजी ! हे बीजों के कारण स्वरूप। आध्यात्मिक आदि दु:ख और मरण से भयरूप ज्वाला से युक्त, महान् संसार रूप अग्नि से बहुत समय तक जले हुए लोगों को सेवा से निर्वाण (सन्ताप की शान्ति) देते हुए और जीवित करते हुए जलस्वरूप आप को नमस्कार है।

यः सर्वेषामावरीता वरीयान् सर्वैर्भावैर्नावृतोऽनादिनिष्ठः।[27]

मार्गातीतायेन्द्रियाणां नमस्तेऽविज्ञेयाय व्योमरूपाय तस्मै ।।

अर्थात् प्रपञ्चों को उत्पन्न करने वाले हे भव (शिवजी)! विभु आप जो सकल पदार्थो का आच्छादान करने वाले हैं परन्तु किसी से भी स्वयं आच्छादित नहीं होते हैं, उत्पत्ति और नाश से रहित नित्य हैं, नेत्र आदि इन्द्रियों के मार्ग का अतिक्रमण किये हुए अतएव अविज्ञेय ऐसे आकाश स्वरूप आपको नमस्कार है।

अणीयसे विश्वविधारिणे नमो नमोऽन्तिकस्थाय नमो दवीयसे ।[28]

अतीत्य वाचां मनसां च गोचरं स्थिताय ते तत्पतये नमो नमः ।।

अर्थात् हे शिवजी ! अतिशय सूक्ष्म होकर भी विश्व को धारण करने वाले आपको नमस्कार है, अन्तर्यामी होने से निकट में रहे हुए परन्तु दुर्ग्रह होने से अति दूर रहे हुए आप को नमस्कार है, वचन और मन से अग्राह्य होकर भी उनके अध्यक्ष ऐसे आप को नमस्कार है, नमस्कार है।

असंविदानस्य ममेश संविदां तितिक्षितुं दुश्चरितं त्वमर्हसि।[29]

विरोध्य मोहात्पुनरभ्युपेयुषां गतिर्भवानेन दुरात्मनापि ।।

अर्थात् हे ज्ञानों के स्वामी। ज्ञान से रहित मेरे शस्त्र प्रहार रूप दुश्चरित्र को सहन करने के लिए आप योग्य हैं, अज्ञान से विरोध को उत्पन्न करके फिर शरण में आने वाले दुरात्माओं के भी आप ही गति हैं।

उपरोक्त विवेचनों के आधार पर कहा जा सकता है कि किरातार्जुनीयमहाकाव्य में महाकवि भारवि शैव सिद्धान्त धर्म से पूर्णत: परिचित थे इसीलिए उन्होंने अष्टादशसर्ग में अर्जुन के मुख से भगवान् शिव के विभिन्न स्वरूपों का स्तुति करवाया है। अत: संक्षेप में यह कह सकते है कि भगवान् शिव का स्वरूप स्वभावत: आनन्द रूप है, यही सच्चिदानन्द है, यही सत्यं शिवं सुन्दरम् है। यह विशुद्धतम् सत् होकर भी असत् नहीं है। अभिव्यक्ति की दृष्टि से वह चित् है एवं रसास्वाद

की दृष्टि से वही आनन्द है। वह अप्रमेय होने पर भी स्वप्रकाश है एवं स्वप्रकाशता के कारण स्वयं आनन्द भी है तथा अपने स्वारूपानन्द का स्वयं आस्वादन भी करता है।[30]

सन्दर्भ सूची-

1. शत. 25
2. तै.सं. सायणभाष्य का. 4/अ. 5/अनु. 3 "यद्वा तस्य सर्वजगदात्मत्वात् ये तत्र यथा वर्तन्ते, तेषु तत्र रुद्र एव तद्रूपेण वर्तन्ते (युक्त:)।
3. शत. 2, 40, 41, 51
4. शत. 28, 41
5. शत. 5
6. शत. 7
7. शत. 28
8. शत. 48
9. शत. 2, 8, 18
10. शत. 27
11. शत. 26
12. शत. 28
13. शत. 25
14. शत. 20, 21
15. स्पन्दकारिका, पृ. 29
16. स्पन्दकारिका, पृ. 2-4
17. किरातार्जुनीयम् 18/22
18. किरातार्जुनीयम् 18/24
19. किरातार्जुनीयम् 18/25
20. [1].किरातार्जुनीयम् 18/30
21. किरातार्जुनीयम् 18/31
22. किरातार्जुनीयम् 18/32
23. किरातार्जुनीयम् 18/35
24. किरातार्जुनीयम् 18/37
25. किरातार्जुनीयम् 18/38
26. किरातार्जुनीयम् 18/39
27. किरातार्जुनीयम् 18/40

28. किरातार्जुनीयम् 18/41
29. किरातार्जुनीयम् 18/42
30. तांत्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि–कविराज